भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन

विभिन्न संकल्पनाएं

सम्पादक : डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन

विभिन्न संकल्पनाएँ

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चंद्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

संस्करण
प्रथम 2025

ISBN : 978 - 81 - 993854 - 7 - 4

मूल्य - 300/-

रचना -
भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन विभिन्न संकल्पनाएँ

सम्पादक -
डॉ. दिनेश चंद्र शर्मा

आवरण -
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक -
श्री श्याम ऑफसेट, किशनगढ़

सूफी काव्य और आध्यात्मिक सौन्दर्य

रामस्वरूप गढ़वाल
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

सूफी शब्द की उत्पत्ति और उसके प्रयोग के विषय में विद्वानों में भिन्न-भिन्न मत पाए जाते हैं। यह निश्चित रूप से कहना कठिन है कि यह शब्द सबसे पहले कब और किसके लिए प्रयुक्त हुआ। कुशैरी (म्र. 988 ई.) तथा शहाबुद्दीन सहरवर्दी (म्र. 1234 ई.) के मतानुसार 'सूफी' शब्द का प्रयोग इस्लामी हिजरी संवत् के दूसरे चरण के अन्त में, लगभग 815 ईस्वी के पश्चात प्रारम्भ हुआ। उनके अनुसार इस समय तक इस शब्द की पहचान होने लगी थी। इस मत का आधार यह है कि प्रारम्भिक हदीस-संग्रह 'सित:' (9-10 शताब्दी ई.) और अरबी कोश 'कामुल' (114 ई.) में 'सूफी' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता।

निकोलस का मत इससे कुछ भिन्न है। उनके अनुसार 869 ईस्वी में अरबी लेखक 'जाहिज' ने इस शब्द का प्रयोग किया था। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि 9वीं शताब्दी के प्रारम्भ, लगभग 811 ईस्वी में ही यह शब्द प्रचलन में आ चुका था। 'अवारिफुल-मारिफ' ग्रंथ के रचयिता शेख शहाबुद्दीन सहरवर्दी का कथन है कि पैगम्बर मुहम्मद की मृत्यु के लगभग दो सौ वर्षों के उपरान्त ही यह शब्द प्रकट हुआ। परन्तु कई अन्य विद्वानों और लेखकों के अनुसार 'सूफी' और सूफी मत का उद्भव पैग़म्बर के जीवनकाल से अथवा उससे भी पहले से माना जा सकता है।

सूफी सम्प्रदाय की विचारधारा और साधना-पद्धति का मूल स्रोत कुरान शरीफ और हदीस ही रहे हैं। यद्यपि कुरान में प्रत्यक्ष रूप से 'हदीस' शब्द नहीं आता, फिर भी सूफी अपने चिन्तन और साधना को कुरान एवं सुन्नत के अनुरूप ही बताते हैं। इस प्रकार सूफी मत का आधार धार्मिक शास्त्रों की शिक्षाओं से जुड़ा हुआ है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में सूफी कवियों और संतों ने साहित्य, समाज और संस्कृति पर गहरा प्रभाव डाला। कुतुवन की 'मृगावती', मंझन की 'मधुमालती', उस्मान की 'चित्रावली', शेख नबी की 'ज्ञानदीप', कासिमशाह की 'हंस जवाहिर' तथा नूर मुहम्मद की 'इंद्रवती' जैसी रचनाएँ न केवल ऐतिहासिक महत्व रखती हैं, बल्कि भारतीय

समाज को गंगा-जमुनी संस्कृति की आभा से भी ओतप्रोत करती हैं। इन कृतियों ने भारतीय सांस्कृतिक प्रवाह में प्रेम, सद्भाव और साझा परम्परा की रंगत घोल दी।

सूफी संतों और निर्गुण संतों के अध्यात्म-दर्शन में प्रेम को ही आधार माना गया है। किन्तु दोनों की अभिव्यक्ति में अंतर दिखाई देता है। निर्गुण संत, जैसे कबीर, परोक्ष सत्ता अर्थात् ब्रह्म की एकता का बोध कराते हैं। इसके विपरीत सूफी कवि सांसारिक जीवन में प्रत्यक्ष रूप से एकता और समानता को मूर्त रूप में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार भारतीय भक्ति और सूफी परम्पराएँ मिलकर एक विशिष्ट सांस्कृतिक चेतना का निर्माण करती हैं।

सूफियों के सम्पूर्ण चिंतन और साधना की जड़ में 'प्रेम' ही प्रधान तत्त्व है। उन्होंने प्रेम को ही परम सत्ता तक पहुँचने का मार्ग माना और उसी के सहारे आत्मा-परमात्मा के मिलन की साधना की। यही उनका रहस्यवाद है। सूफियों के अनुसार साधक का चरम लक्ष्य 'फना' और 'बका' है। 'फना' का अर्थ है- अपने 'अहं' का पूर्ण विनाश, और 'बका' का अर्थ है- ईश्वर में स्थायी अस्तित्व की प्राप्ति। सूफी संत कहते हैं- ''फना बगैर बका का पता नहीं मिलता, खुदी मिटाओ ना जब तक खुदा नहीं मिलता।'' अर्थात् जब तक मनुष्य अपने अहंकार का विसर्जन नहीं करता, तब तक उसे ईश्वर की अनुभूति नहीं हो सकती।

सूफियों की साधना में 'वज्द' (भावाविष्टता अथवा अति-आनन्द) की विशेष भूमिका है। उनके विश्वास के अनुसार आत्मा परमात्मा का दीदार (साक्षात्कार) इसी भावावस्था में सम्भव है। इस भाव-विभोरता को व्यक्त करने के लिए उन्होंने अनेक प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया- 'फना' (स्वयं का लोप), 'वज्द' (भावमग्नता), 'समा' (संगीत), 'जौक' (स्वाद), 'शर्ब' (पीना), 'गैबत' (अहं से बेखबर होना), 'जज़्बा', 'हाल' (भावाविष्ट अवस्था) आदि। साधना की यह प्रक्रिया धीरे-धीरे साधक के भीतर ऐसी स्थिति उत्पन्न करती है कि उसका 'अहं' लुप्त हो जाता है और ईश्वर का प्रेम ही उसके जीवन का पूर्णाधार बन जाता है।

सूफ़ी कवियों ने अपने प्रेम-तत्त्व को लौकिक प्रेमगाथाओं के माध्यम से व्यक्त किया। यह लौकिक प्रेम वास्तव में ईश्वर से मिलाने वाला माध्यम है। उनके अनुसार यह समस्त जगत एक अदृश्य प्रेमसूत्र से बंधा हुआ है। मनुष्य इस लौकिक प्रेम का सहारा लेकर ईश्वर के निकट पहुँच सकता है। सूफ़ियों का दृष्टिकोण सर्वव्यापक था- वह ईश्वर ही है जो हर रूप में प्रकट होता है, चाहे वह शक्ति का रूप हो या शिव का, चाहे तीनों लोकों के जीव हों, चाहे भिखारी हो या राजा। इस भाव को कवि 'मंझन' ने इस प्रकार व्यक्त किया-

''एही रूप सकति औ सीऊ। एही रूप त्रिभुवन कर जीऊ।।

एही रूप प्रगटे बहु भेसा। एही रूप जग रंक नरेसा।।''

अर्थात् वही एक रूप शक्ति और सीता का है, वही तीनों लोकों के प्राणों में व्याप्त है, वही अनेक रूपों और वेशों में प्रकट होता है, वही भिखारी और राजा दोनों के रूप में विद्यमान है।

सूफ़ियों के अनुसार इश्क़ (प्रेम) कोई साधारण भावना नहीं, बल्कि एक सनातन सत्य है जो मानव-हृदय में स्वयं उत्पन्न होता है। प्रेम ही सर्वोच्च सुन्दरता है और यही वह बिन्दु है जहाँ भारत और ईरान, पूरब और पश्चिम की धारणाएँ मिल जाती हैं। मनुष्य के भीतर अपने मूल तक पहुँचने की लालसा होती है और उसके लिए एक ही मौलिक सिद्धान्त है- इश्क या प्रेम। सूफी चाहे अरब, ईरान, चीन, यूरोप, मिस्र या भारत का क्यों न हो, सभी का स्वर एक ही है, सभी प्रेम की साधना करते हैं, एक ही गीत गाते हैं। भाषा और अभिव्यक्ति में भिन्नता हो सकती है, लेकिन मूल सिद्धान्तों में सब एक महासागर की बूँदों के समान एकरूप और संयुक्त हैं।

सूफी परम्परा में प्रेम को सभी साधना-पदों का आधार माना गया है। जैसे प्रायश्चित (तौबा) साधना की पहली सीढ़ी है, वैसे ही प्रेम सम्पूर्ण अवस्थाओं का आधार है। एक सच्चा प्रेमी 'फना', 'बका', 'सहाव', और 'महाव' जैसी चरम अवस्थाओं को प्राप्त कर सकता है। प्रेम ही वह उत्प्रेरक शक्ति है जो साधक को आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर करती है। यह एक ऐसी वासना है जो अन्य सभी सांसारिक वासनाओं को समाप्त कर देती है। यह उत्कण्ठा और आकर्षण का ऐसा बल है जो हृदय को शुद्ध कर देता है और मनुष्य को ईश्वर के और निकट ले आता है।

सूफियों के अनुसार प्रेम ईश्वर का सारतत्त्व है, वही उसका अनुपम उपहार है। ईश्वर का प्रेम मनुष्य के हृदय पर पड़े पर्दों को हटाकर उसे सत्य के प्रकाश से आलोकित करता है। यही नूर-ए-यकीन (विश्वास का प्रकाश) है। सूफी दर्शन का सार यही है- सौन्दर्य से प्रेम और प्रेम से मुक्ति।

सूफ़ियों के प्रेममार्ग में विरह (वियोग) को विशेष महत्व प्राप्त है। उनके अनुसार बिना विरह की ज्वाला से गुजरे कोई भी जीव ईश्वर के समीप नहीं पहुँच सकता। विरह साधक की आत्मा को शुद्ध करता है और उसे परमात्मा के प्रेम के लिए तड़पाता है। इसीलिए सूफी कवियों ने विरह को प्रेम का सर्वोच्च आयाम माना है।

भारतीय सूफी काव्य-परम्परा में मलिक मुहम्मद जायसी का स्थान अत्यन्त विशिष्ट है। उनकी अमर कृतियाँ 'पद्मावत', 'अखरावट' और 'आखिरी कलाम' सूफी प्रेम-दर्शन के प्रतीक हैं। जायसी ने विप्रलंभ-श्रृंगार अर्थात् विरह की पीड़ा को जिस मार्मिकता और गहराई से व्यक्त किया है, वह भारतीय साहित्यिक परम्परा के लिए भी

अप्रतिम कसौटी है। जायसी की विरह-भावना भारतीय जनमानस के हृदय से गहरे स्तर पर जुड़ जाती है, क्योंकि वह उसकी अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं से सामंजस्य रखती है।

उनकी पंक्तियाँ-

यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाउ।
मकु तेहि मारग उड़ि परों, कंत घरैं जहं पाउ।।

विरह की चरम अनुभूति को व्यक्त करती हैं। यहाँ साधक अपने जले हुए शरीर की राख को भी प्रिय के चरणों में बिछ जाने की आकांक्षा करता है। प्रिय के पाँवों के स्पर्श मात्र के लिए अपने अस्तित्व को मिटा देने की यह उत्कट लालसा भारतीय हृदय को गहराई तक छू लेती है। जायसी की यह अभिव्यक्ति बाद के कवियों के लिए भी विरह-भावना की प्रेरणा बन गई। 'पद्मावत' अवधी भाषा में रचा गया महाकाव्य है, जिसमें दोहा-चौपाई छंदों का प्रयोग हुआ। यह महज संयोग नहीं है कि लगभग साढ़े तीन दशक बाद तुलसीदास ने भी 'रामचरितमानस' की रचना अवधी भाषा और दोहा-चौपाई छंदों में ही की। यदि जायसी सूफी फकीरों में अपनी आध्यात्मिक सिद्धियों के लिए विख्यात हैं तो तुलसी भक्त कवियों में आचार्य-स्थान रखते हैं।

सूफी कवि ईश्वर को प्रियतम (माशूक) मानते हैं और स्वयं को प्रेमी (आशिक) के रूप में देख कर उसके प्रति अनन्त प्रेम व्यक्त करते हैं। इस मार्ग में उन्होंने 'इश्क मजाजी' (सांसारिक प्रेम) को भी मान्यता दी, क्योंकि उनके अनुसार यह 'इश्क हकीकी' (आध्यात्मिक प्रेम) तक पहुँचने की सीढ़ी है। सूफियों में यह कहावत प्रसिद्ध है- ''अल-मजाजा कुन्तरतुल हकीकी'' अर्थात् सांसारिक प्रेम ही वास्तविक प्रेम तक पहुँचने का पुल है। जामी सहित अनेक सूफी कवियों ने भी इसी विचार का प्रतिपादन किया। यौनभावना, जो स्वाभाविक रूप से प्रबल होती है, सूफी साधना में संयमित होकर ईश्वर-प्रेम में रूपांतरित कर दी जाती है।

सूफी मानते हैं कि सृष्टि में जो कुछ सौन्दर्य है वह वास्तव में ईश्वर का सौन्दर्य (हुस्न) है। इसलिए जहाँ भी सौन्दर्य के दर्शन होते हैं, वहाँ ईश्वर की झलक मिलती है। पहले साधक सांसारिक सौन्दर्य (हुस्न मजाजी) को ध्यान का केन्द्र बनाता है, और धीरे-धीरे यह ध्यान उसे ईश्वर के दिव्य सौन्दर्य (हुस्न हकीकी) की ओर ले जाता है। सांसारिक प्रेम और सौन्दर्य गन्तव्य नहीं, बल्कि उस परम लक्ष्य तक ले जाने वाली ज्योति-पुंज है।

सूफी विचारधारा में 'हुस्न' (सौन्दर्य) और 'इश्क' (प्रेम) दोनों अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। सूफी लेखक अलगजनी ने सौन्दर्य के दो रूप बताए हैं-

(1) जाहिरी हुस्न (बाह्य सौन्दर्य) - जो सामान्य नेत्रों से दिखता है।

(2) बातिनी हुस्न (आंतरिक सौन्दर्य) - जिसे केवल हृदय के नेत्र से देखा जा सकता है।

बाह्य सौन्दर्य सभी को दिखाई देता है, परन्तु आंतरिक सौन्दर्य का अनुभव केवल साधक या विशिष्ट व्यक्ति ही कर सकता है। सूफी प्रेम को सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण मानते हैं और कुरान में भी ईश्वर को 'प्रेम करने वाला' बताया गया है।

जब 'इश्क मजाजी' क्रमश: 'इश्क हकीकी' में परिणत होता है, तब साधक आत्मानंद की अनुभूति करता है। वह ईश्वर के सौन्दर्य पर ध्यान केन्द्रित करते हुए विस्मय-विमुग्ध हो जाता है और चरम साक्षात्कार की ओर बढ़ता है। इस अवस्था में प्रेमी स्वयं प्रेमरूप बन जाता है। प्रेम एक ऐसी रागिनी है जो बजते ही साधक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रेममय कर देती है।

अमीर खुसरो के सूफी प्रेम-दर्शन में आत्मा और परमात्मा के मिलन से अधिक महत्व 'विरह' को दिया गया है। उनका मानना है कि विरह की अग्नि में तपे बिना कोई साधक अपने प्रियतम परमात्मा तक नहीं पहुँच सकता। इसी भाव को प्रकट करने के लिए खुसरो ने अपने काव्य में अनेक मार्मिक दोहे रचे हैं-

खसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरा मन पीउ को, दोउ भए इक रंग।।

सुहाग की रात के प्रथम मिलन का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि मैं अपने पिय के साथ संपूर्ण रात्रि जागती रही। इस जागरण में ऐसी एकात्मता का अनुभव हुआ कि मेरे तन का रंग और पिय के मन का रंग एक हो गए। यहाँ पर आत्मा और परमात्मा का पूर्ण संयोग एक रंग में रंग जाने की प्रतीकात्मक अनुभूति है। भारतीय प्रेम-भक्ति परंपरा में भी यही भावना मिलती है, जहाँ राधा अपने गोरे रंग का परित्याग कर प्रिय कृष्ण का श्याम रंग धारण करना चाहती है।

इसी प्रकार खुसरो ने विरह की स्थिति का भी बड़ा मार्मिक चित्र खींचा है। एक स्थान पर नायिका उलाहना देती है कि -

यो गए बालम वो गए नदियों पार।
आपे पार उतर गए हम तो रहे मजधार।

प्रियतम तो जीवन की नदी पार कर गए, किन्तु मुझे मध्य धारा में ही छोड़ गए। यह भाव उस आत्मा की स्थिति को व्यक्त करता है, जो परमात्मा के मिलन के अभाव में तड़पती है।

सूफी चिन्तन में प्रेम को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। शेख हुज्वेरी का कथन है कि जो व्यक्ति प्रेम से शुद्ध होता है, वही 'साफी' और अंतत: 'सूफी' कहलाता

है। इसी तरह सूफी दार्शनिक अल-फराबी प्रेम को ही ईश्वर मानते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि प्रेम केवल मानवीय संबंध का नहीं, बल्कि परम सत्ता का स्वरूप है।

सूफी संतों के अनुसार प्रेम जाग्रत होने पर साधक के लिए सांसारिक वस्तुएँ तुच्छ हो जाती हैं, किन्तु उसका हृदय संसार के प्राणियों के प्रति दया और करुणा से भर जाता है। वह प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का दर्शन करता है और उनके सुख-दु:ख को अपना मानकर सेवा-भाव से संलग्न रहता है। इसीलिए सूफी साधक अपने जीवन में कष्टों का स्वागत करता है और जीव मात्र के कल्याण के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है।

वपजीद ने ऐसे साधक के लक्षण बताए हैं। उनके अनुसार जिस पर ईश्वर का प्रेम बरसता है, उसमें तीन दिव्य गुण प्रकट होते हैं—पहला, समुद्र जैसी उदारता; दूसरा, सूर्य जैसी करुणा; और तीसरा, पृथ्वी जैसी विनम्रता।

सूफी सम्प्रदाय सौन्दर्य के प्रतीकों को आत्मा और परमात्मा जिन्हें आशिक (प्रेमी), आत्मा तथा परमात्मा को माशूका (प्रिया) स्वीकार किया गया है। हिन्दी और फारसी साहित्य में इन प्रतीकों से प्रेमी से विरह को संसार में अभिव्यक्त करते हुए कहा है। बिना प्रीतम के, उस पार जाने के उपाय सोचती विरहिन नायिका की मनोदशा इस दोहे में वर्णित है-

भाई रे मल्लाहो हमको पार उतार।
हाथ की देऊंगी मुंदरी गले को देऊं हार।।

अर्थात् मैं हाथ की मुँहरी और गले का हार तुम्हें भेंट में दूँगी, ऐ मल्लाहो, मुझे भी नदी के पार उतार दो, ताकि मैं पिय से मिल सकूँ। उसके बिना जीवन अधूरा और पीड़ादायक है। खुसरो लोक-प्रसिद्ध गहनों के उपहार, जो जारी को अत्यधिक प्रिय होते हैं, मल्लाहों को भेंट-स्वरूप देने के उल्लेखों के माध्यम से अपने भारतीय लोकमानस में पैठ सिद्ध करते हैं। किन्तु भारतीय लोकमानस में व्याप्त परमात्म-सत्ता और उससे बिछुड़े, हीन अनुभव करते जीव की विभिन्न मनोदशाओं को भी कई प्रकार के झलकाते हैं खुसरो-

देख मैं अपने हाल को, रोऊँ जार-ओ-जार।
बैं गुणवंता बहुत हैं, हम हैं औगुनहार।।

प्रिय-परमात्मा-अल्ला तो बहुत गुणी हैं, किन्तु मैं (जीव) अवगुणी ही-दुर्गुणों का भंडार हूँ। इस अहसास से खुसरो लोगों में अपने दुर्गुणों को त्यागने की सोच पैदा करना चाहते हैं, ताकि वे निर्ममता, जुल्म, हत्या, हिंसा आदि दुष्कर्मों को त्यागकर प्रियतम को प्रिय लगने वाले गुणों को अपने चरित्र-व्यवहार में लाएँ। अपने

को प्रिय के योग्य बनाएँ। अंत में पुन: एक दोहा 'सेज' को लेकर देखें-

सेज सूनी देख के रोऊं दिन-रैन।
पिया-पिया कहती मैं पल भर सुख न चैन।।

बुल्लेशाह ने जो कि प्रतसिद्ध सूफी साईं थे उन्होंने भी नख और शिख वर्णन से आत्मा-परमात्मा को अभिव्यक्त किया है। सूफी परम्परा में बुल्लेशाह ने हीर-रांझा-

रांझा रांझा कर दी, नी मैं आपे रांझा होई।
रांझा मैं विच, मैं रांझे विच होर ख्याल न कोई।
मैं नहीं ओह आप हैं, अपनी आप करे दिलजोई।

हीर और राँझा की प्रेम कहानी सर्वविदित है। बुल्लेशाह कहते हैं, मुझे अब कोई हीर के नाम से नहीं पुकारे। मैं तो अब राँझा-राँझा पुकारती हुई स्वयं भी राँझा हो गई हूँ। अब हम दोनों-आत्मा ओर परमात्मा-एक हो गए हैं। अद्वैत घटित हो गया है। अब मेरा कोई वजूद नहीं रहा। सूफी विचार की यह अंतिम परिणति है।

सूफी सम्प्रदाय में प्रेम और सौन्दर्य के प्रतीकात्मक रूपों का विशेष स्थान है। यहाँ आत्मा को 'आशिक' (प्रेमी) तथा परमात्मा को 'माशूक' (प्रिया) मान लिया जाता है; इन प्रतीकों के माध्यम से प्रेम और विरह की अनुभूतियाँ हिन्दी और फारसी काव्य में प्रखरता से व्यक्त हुई हैं। बिना प्रीतम के, उस पार जाने के उपाय सोचती हुई विरहिनी नायिका की मनोदशा लोक-प्रसिद्ध दोहों में बड़ी मार्मिकता से मिलती है:

भाई रे मल्लाहो हमको पार उतार।
हाथ की देऊंगी मुंदरी गले को देऊं हार।।

इसमें नायिका अपनी प्रिय से मिलने के लिए मल्लाह से विनती करती है और अपने प्रिय के प्रति समर्पण के प्रतीकस्वरूप अपने गहने देने को कहती है— जीवन उसके बिना अधूरा और पीड़ादायक है। अमीर खुसरो ने इसी लोक-भावना को अपनाते हुए मल्लाहों को गहने भेंट करने की परम्परा की चचाज़ कर भारतीय लोकमानस में गहरी पैठ बनाई।

खुसरो के काव्य में आत्म-स्वीकृति और आत्म-सुधार का संदेश भी निहित है— वह स्वयं के दोषों का बोध कराते हुए कहता है कि प्रिय परमात्मा गुणवान हैं पर मैं दोषों का भंडार हूँ; अत: अपने दुर्गुणों का त्याग कर प्रिय को प्रिय बनने योग्य बनो। वह इसी भावना से पाठक में सुधार और नैतिक जगत के प्रति जिम्मेवारी का भाव जगाना चाहता है।

विरह और मिलन के भावों का सूफी अभिव्यक्ति-शैली में एक और रूप

'सेज' (शय्या) के माध्यम से भी मिलता है:

सेज सूनी देख के रोऊँ दिन-रैन।
पिया-पिया कहती मैं पल भर सुख न चैन।।

यहाँ नायिका की बेसब्री और हर क्षण प्रिय की स्मृति ने उसे चैन न लेने देने वाली कर रखी है।

पश्चात् गाँव-जन जीवन और लोककथाओं को लघु-छंदों में समेटते हुए बुल्लेशाह जैसे सूफी कवियों ने भी आत्मा-परमात्मा के मिलन की भाव-यात्रा हीर राँझा के आलंबन से व्यक्त की। बुल्लेशाह की पंक्तियाँ—

रांझा रांझा कर दी, नी मैं आपे रांझा होई।
रांझा मैं विच, मैं रांझे विच होर ख्याल न कोई।
मैं नहीं ओह आप हैं, अपनी आप करे दिलजोई।

यह आत्म-परमात्मा एकत्व की विलक्षण अनुभूति है—नायिका अब केवल प्रेमी का नाम पुकारती-पुकारती स्वयं ही प्रेमी बन गई; व्यक्ति का स्व, भेद-भाव मिटकर अद्वैत (अखण्ड एकत्व) की अवस्था में विलीन हो गया है। यही सूफी विचार की अंतिम परिणति—स्व-नाश (फना) और ईश्वर-आविर्भाव में समाहित होने का अनुभव।

सूफी संतों में कुतुवन का नाम विशेष रूप से लिया जाता है, जिन्हें प्रेममार्गी संत और चिश्ती सम्प्रदाय का अनुयायी माना जाता है। उनकी कृति 'मृगावती' में 'तिल, जुल्फें' आदि शृंगारिक प्रतीकों का सहारा लेकर आध्यात्मिक अनुभूति को व्यक्त किया गया है। यह विशेषता सूफी काव्य परंपरा की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है, जिसमें लौकिक सौन्दर्य के रूपकों के माध्यम से अलौकिक और दिव्य अनुभूति प्रकट की जाती है।

इसी प्रकार सूफी कवि मंझन के सिद्धान्त में समस्त सृष्टि को रहस्यमय दृष्टि से देखा गया है। उनके अनुसार इस समग्र जगत् में केवल ईश्वर ही व्याप्त है। सभी रूपाकारों और प्रतीकों में उसी परमात्मा का दशज्न किया जा सकता है। साधक जब गहन विरह की वेदना और व्याकुलता से गुजरता है, तभी उसे परमतत्त्व की झलक प्राप्त होती है।

सूफी परंपरा की एक अन्य महान साधिका सन्त ताज बीबी थीं, जिन्होंने मुस्लिम परिवार में जन्म लेने के बावजूद रसखान की भांति कृष्ण-भक्ति को अपनाया। मीराबाई की तरह वे भी गीत गाकर कृष्ण-भक्ति का संदेश देती थीं। उन्होंने ब्रजभाषा में रचनाएँ कीं, जिनमें कृष्ण के स्थान, प्रतीक और चिह्न बड़ी मार्मिकता से उकेरे गए हैं। विशेषकर यमुना (कालिंदी) का तट, कदंब की कुंजें और कमल की सेज उनके

गीतों में बार-बार आते हैं—

कालिंदी के तीर नीर, निकट कदंब कुंज,
मन कुछ ईच्छा कीनी, सेज सरोजन की।
अंतर के यामी कामी, कंबल के दल लेकें,
रची सेज तहां शोभा, कहा कहौ तिन की।।
तिहि सम 'ताज' प्रभु, दंपत्ति मिले की छवि,
बरन सकत कोऊ, नाहिं वाहि छिन की।।
राधा की चटक देख, अंखियाँ अटक रहीं,
मीन को मटन नाहिं साजत बा दिन की।।

इन पदों में प्रकृति-सौन्दर्य और राधा-कृष्ण के प्रेम का विलक्षण संगम मिलता है। यमुना के तट पर कदंब की छाँव में सजी कमल-सेज, राधा की चटक और कृष्ण की छवि—यह सब दिव्य मिलन का प्रतीक है।

सूफी काव्य परंपरा में सौन्दर्य केवल लौकिक आकर्षण नहीं, बल्कि आध्यात्मिक प्रतीक है। यही कारण है कि हिन्दी और फारसी दोनों साहित्य-धाराओं में सूफी कवियों ने सौन्दर्य के माध्यम से प्रेम और ईश्वर की अनुभूति का विवेचन किया।

इस परंपरा से समर्थित होकर हिन्दी और फारसी में अनेक ग्रंथों की रचना हुई। हिन्दी में मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' अवधी भाषा में लिखी, जबकि फारसी में 'चन्दायन' (मौलाना दाऊद), 'मखजन-उल-असरार' (निजामी), 'मसनवी' (रूमी), 'यूसुफ-जुलेखा' (जामी), 'लैला-मजनूँ' (अमीर खुसरो) आदि रचनाएँ हुईं। इन सब ग्रंथों में सूफी चिन्तन के विविध पक्षों का दार्शनिक और प्रतीकात्मक विवेचन मिलता है।

जायसी ने विशेष रूप से 'पद्मावती' को प्रतीक मानकर उसके रूप-सौन्दर्य का अत्यंत शृंगारिक वर्णन किया है—ललाट, भौंह, नयन, नासिका, जिह्वा, मुख, दाँत, अधर, भुजाएँ, गाल, कुच, पीठ, नाभि, कटि और नितम्ब तक की संरचना और शोभा का चित्रण कर उन्होंने लौकिक रूप-सौन्दर्य के माध्यम से अलौकिक सौन्दर्य और आध्यात्मिक साधना की राह दिखलाई।

जायसी ने 'पद्मावत' में पद्मावती के सौन्दर्य को केवल लौकिक दृष्टि से नहीं, बल्कि एक दैवीय आभा से मंडित कर प्रस्तुत किया है। उनके काव्य में पद्मावती केवल एक नारी नहीं, बल्कि सत्य, पवित्रता और दैवीय शक्ति की प्रतिमा प्रतीत होती है। इसी प्रकार फारसी कवि निजामी ने 'खुसरो-शीरीं' काव्य में शीरीं के रूप का अत्यन्त सूक्ष्म और संवेदनात्मक वर्णन किया है। निजामी ने शीरीं के केशों की लटों,

नयन, अधर, कद, ग्रीवा, उँगलियों और अंग-प्रत्यंग को इस प्रकार चित्रित किया है कि पाठक उसकी छवि को मानो आँखों से देख सके। निजामी का सौन्दर्य-वर्णन लौकिक आकर्षण से आगे जाकर एक 'आदर्शीकृत सौन्दर्य' की परिकल्पना प्रस्तुत करता है।

इसी परम्परा में हाफिज ने अपने 'दीवान-ए-हाफिज' में शृंगार को आध्यात्मिकता से जोड़ते हुए सौन्दर्य का ऐसा वर्णन किया है, जिसमें बाह्य रूप के माध्यम से आत्मिक प्रेम और ईश्वर से मिलन की अभिलाषा झलकती है। उनकी गजलों में जुल्फें, नयन, अधर, मुख, कान, देह, कमर आदि का ऐसा रूपकात्मक प्रयोग हुआ है, जो सूफी चिन्तन की गहराई तक ले जाता है। उदाहरण के लिए, जुल्फें केवल केश नहीं, बल्कि प्रेमी के लिए बंधन का जाल और आत्मा के लिए आकर्षण का फंदा बन जाती हैं। हाफिज की भाषा में लौकिक और आध्यात्मिक दोनों रूपों का अद्‌भुत सम्मिश्रण मिलता है।

हिन्दी सूफी साहित्य में मौलाना दाऊद का 'चंदायन' इस परम्परा का अनूठा उदाहरण है। दाऊद ने चन्दा के रूप का वर्णन करते हुए केवल शारीरिक सौन्दर्य की सीमा तक ही नहीं रुके, बल्कि उसे आध्यात्मिक प्रतीकों के माध्यम से दिव्यता प्रदान की। चन्दा के अंग-प्रत्यंग—मांग, केश, नयन, नासिका, अधर, ग्रीवा, उरोज, चरण आदि—सबको कवि ने ऐसे अलंकारों से सजाया है कि वे दैवीय सौन्दर्य का रूप ले लेते हैं। यहाँ तक कि चन्दा के चरणों की सुगन्ध से सम्पूर्ण दिशाएँ सुवासित हो उठती हैं और उसके स्पर्श से पाप नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार दाऊद ने सौन्दर्य को भौतिक आकर्षण से उठाकर आध्यात्मिक मोक्ष से जोड़ दिया है।

कुतुबन की 'मृगावती' में भी यही प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने सूफी परम्परा के अनुरूप आध्यात्मिक प्रेम और सौन्दर्य का वर्णन किया है, जहाँ नायक-नायिका का मिलन केवल सांसारिक नहीं, बल्कि प्रेम और आत्मा के शाश्वत मिलन का प्रतीक है।

इन सभी कवियों की काव्य-दृष्टि से यह स्पष्ट होता है कि सूफी परम्परा में सौन्दर्य का आशय मात्र भौतिक रूप-सौन्दर्य नहीं है, बल्कि यह प्रेम, भक्ति, आत्मानुभूति और ईश्वर-साक्षात्कार की ओर ले जाने वाला एक आध्यात्मिक प्रतीक है।

सूफी परम्परा में सौन्दर्य केवल शारीरिक आकर्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि वह प्रेम, भक्ति और आत्मानुभूति की गहराई को दर्शाता है। हाफिज (पूरा नाम - ख्वाजा शम्सुद्दीन हाफिज) की गजलों में यह दृष्टिकोण अत्यधिक मार्मिक ढंग से व्यक्त हुआ है। उनका दीवान-ए-हाफिज केवल शृंगार-वर्णन नहीं, बल्कि उसमें छिपा हुआ है सूफी चिन्तन का आध्यात्मिक रहस्यवाद।

फारसी विद्वान काजी सज्जाद हुसैन (दीवान-ए-हाफिज, सबरंग किताबघर, दिल्ली, 1963) ने इन गजलों का गहन अध्ययन करते हुए बताया है कि हाफिज ने 'जुल्फ' को एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक प्रतीक बनाया।

हाफिज कहते हैं कि किसी व्यक्ति का सौन्दर्य केवल आँख, केश, कपोल और तिल तक सीमित नहीं है; प्रेम के इस व्यापार में हजारों सूक्ष्म बिन्दु छिपे हुए हैं। (6/30) यहाँ कवि लौकिक सौन्दर्य को सीमित मानकर आध्यात्मिक प्रेम की अनन्त गहराइयों की ओर संकेत करता है।

दिल और तेरी काली जुल्फ की हालत से वह क्या परिचित हो सकता है, जिसे कभी काले साँप ने न डंसा हो। (9/39) जुल्फ का अंधकार यहाँ मोह और माया के बन्धन का प्रतीक है, जो केवल वही जान सकता है जिसने प्रेम का गहरा अनुभव किया हो। कपोल के स्वर्ग बाग में तेरी काली जुल्फ क्या है? जैसे मोर जन्नत-उन-नईम में पहुँच गया हो। (11/35) यहाँ जुल्फ को स्वर्गिक सौन्दर्य और दिव्यता का प्रतीक बताया गया है।

तेरी जुल्फ की वक्रता धर्म (दीन) और अधर्म (कुफ्र) दोनों के लिए जाल है। और यह तो उसके कार्यों में से केवल एक साधारण-सा कार्य है। (13/42) यहाँ जुल्फ केवल केश नहीं, बल्कि संसार के आकर्षण और भ्रम का रूपक है, जिसमें धर्म और अधर्म दोनों ही उलझ जाते हैं। ऐ दिल! फन्दे की भाँति उसके केश में मत उलझ, क्योंकि यहाँ तू अनेक निर्दोष सिरों को कटा हुआ देखेगा। (15/54) यह चेतावनी है कि प्रेम का बन्धन आत्मा को मोक्ष से दूर कर सकता है, अत: उसमें फँसना खतरनाक है।

इस प्रकार हाफिज ने 'जुल्फ' के माध्यम से प्रेम के आकर्षण, मोह के जाल, आध्यात्मिक संघर्ष और ईश्वर की खोज - इन सबको एक साथ व्यक्त किया। यही सूफी परम्परा की विशेषता है कि लौकिक सौन्दर्य को रूपक बनाकर वह उसे आध्यात्मिक और दैवीय स्तर तक उठा लेती है।

हाफिज ने कहा है कि- खुदा के लिए जुल्फ़ न संवार क्योंकि हमारे लिए ऐसी कोई रात्रि नहीं है जिसमें पूर्बी-हवा (बादे-सबा) के साथ लड़ाई न हो। (18/64)

यहाँ जुल्फ का अंधकार रात्रि की रहस्यमयी घनता और इश्क के संघर्ष का प्रतीक है। प्रेमी का हर दिन और हर रात प्रियतम की जुल्फों और हवाओं (भाग्य या परिस्थितियों) से जूझने में बीतता है।

तेरे केशपाश के चंगुल से किसी को छुटकारा नहीं मिला और तेरी भृकुटी के विक्षेप तथा हाव-भाव के तीरों से कोई सुरक्षित नहीं हुआ। (25/77)

जुल्फ यहाँ आकर्षण और मोह के बन्धन का प्रतीक है। यह इश्क का ऐसा जाल है जिसमें देवता, साधु और सामान्य मनुष्य सभी फँस जाते हैं।

उसके जुल्फ के पर्दे के पीछे सूर्य के समान चन्द्रमुख है। यह ऐसा सूर्य है जिसके सामने बादल हैं। (27/82)

प्रिय का मुख सूर्य है, और जुल्फें उसके सामने पड़ी छाया। यह छवि प्रकट और अप्रकट ईश्वर की है—वह प्रकाशमान भी है और रहस्यमय आवरण में भी।

प्रात:कालीन समीर ने उसकी जुल्फ को खींचा आकाश ने मुझे यहाँ हवा की तरह भी जगह न दी। (29/90)

यहाँ जुल्फ जीवन की संकुचित परिस्थितियों और बन्धनों का प्रतीक है, जिनमें प्रेमी को सांस लेने तक की जगह नहीं मिलती।

प्रेमी जब तेरी जुल्फ के जाल में फँसा तो बोला कि दुख और क्रोध के बन्धन से मुझे मुक्ति मिल गई। (32/114)

सूफी दृष्टि से यहाँ विरोधाभास है— बंधन ही मुक्ति है। जुल्फ में फँसना सांसारिक दृष्टि से बंधन है, पर आध्यात्मिक दृष्टि से वह आत्मा को अहंकार और क्रोध से मुक्त करता है।

अंधेरी रात में तेरी जुल्फ के पेच दर पेच रास्ते को कैसे तय करूँ? शायद तेरे मुख का दीपक ही मार्ग दिखाए। (34/115)

जुल्फ का अंधकार भ्रम और माया है, जबकि मुख का प्रकाश सत्य और ईश्वर की ज्योति।

मुख का प्रकाश रहते हुए भी तेरी जुल्फ सारी रात दिल को लूटती है। वह चोर हाथ में दीपक लेकर चोरी करता है। (36/115)

यहाँ जुल्फ को चोर कहा गया है, जो ईश्वर की रोशनी (मुख) के होते हुए भी भक्त का हृदय चुरा लेती है।

मैंने जिस मृगनाभि का वर माँगा था, वह तेरे सुगन्धित केश की भंगिमा में मिला। (38/120)

यहाँ प्रिय के केश कस्तूरी की सुगन्ध का रूपक हैं, जो आध्यात्मिक आनन्द (सुगन्ध) का द्योतक है।

तेरी जुल्फ की हर शिकन पचास घेरा रखती है। टूटा हुआ दिल इस शिकन से कैसे बाहर निकले? (41/124)

प्रेम के बन्धन से निकलना असम्भव है। हर शिकन में सैकड़ों जाल हैं। यह आध्यात्मिक मार्ग की कठिनाई का रूपक है।

मैंने कहा प्रेमिका का केशपाश क्या है? बोला—हाफिज अमावस्या की रात

की शिकायत कर रहा था। (44/133)

जुल्फ को अमावस्या की रात से जोड़ा गया है—पूर्ण अंधकार और गहन रहस्य।

मैंने कहा तेरी जुल्फ की सुगंध ने मुझे गुमराह कर दिया। उसने कहा—गुलामी कर, वही तेरा पथप्रदर्शक होगा। (57/156)

जुल्फ की सुगन्ध यहाँ आध्यात्मिक आकर्षण है, और 'गुलामी' सूफी मार्ग की ईश्वर-भक्ति और आत्मसमर्पण का प्रतीक है।

हाफिज की कल्पना में जुल्फ वह शक्ति है जो प्रेमी का नाश भी कर सकती है और उसकी प्राण-भक्ति की परीक्षा भी—जैसे वह कहता है -

अगर तेरी बिखरी हुई जुल्फ पूर्वी हवा के हाथ पड़ जाय, वहाँ कहीं भी हृदय हो, वह बर्बाद हो जाय। (59/158)

इस पंक्ति में जुल्फ का फैलना और हवा के साथ उसका मिलन प्रेमी के लिए विनाशकारी होने का रूप ले लेता है; तात्पर्य यह कि प्रिय की अनियंत्रित सुंदरता किसी भी हृदय को उजाड़ सकती है। यहाँ जुल्फ को एक नियति-शक्ति की तरह दिखाया गया है—आकर्षक, पर घातक।

इस शेर में हास्य तथा विनम्रता का भाव सूक्ष्मता से समाया है -

अगर मैंने तेरी काली जुल्फ को मुश्के-खुतन कह दिया है तो ऐ प्रिय! क्रोध में न होओ। कहने में गलती हो ही जाती है। (60/159)

बोलने में हुई त्रुटि को प्रेमी की नादानी माना गया है; वह जानता है कि जुल्फ को परिभाषित करना कठिन है, और नामकरण की चूक भी प्रेम के खेल की स्वाभाविकता है। यह पंक्ति प्रेमी की असावधानी के साथ-साथ उसकी बिनशर्त समर्पणभाव का संकेत भी देती है—नाम गलत हुआ तो क्या हुआ, प्रेम तो सत्य है।

हाफिज की भाव-भक्ति में जुल्फ और आत्मा का गहरा सम्बन्ध दिखाई देता है-

हृदय तेरी जुल्फ में ठहर गया क्योंकि उसको हवा की प्रसन्नता प्राप्त थी और अब तो उस विपदग्रस्त की खबर नहीं आती। (65/170)

यहाँ हृदय इतनी गहराई से जुल्फ में वास कर गया कि उसका बचपन/पूर्व जीवन की खबर तक नहीं रहती। जुल्फ प्रेमी के जीवन का केन्द्र बन चुकी है; प्रेमी का अस्तित्व उसी में स्थिर है और वह बाहरी जगत की सूचनाओं से कट चुका है।

अनादि-अन्त का प्रतिबन्धहीन निष्ठा-भाव भी हाफिज के शेरों में बनता है-

मेरे हृदय ने अनादि काल (अजल) में ही तेरी जुल्फ से संबंध जोड़ा है — यह अन्त काल तक सिर न मोड़ेगा और न प्रतिज्ञा से हटेगा। (67/173)

इस में जुल्फ-संबन्ध मात्र ऐतिहासिक आग्रह नहीं; यह आत्मिक वचन है— प्रेम का बन्धन आत्मा के स्वरूप में पहले से ही विद्यमान था और अनन्तकाल तक अमिट रहेगा।

जुल्फ की सुगन्ध का आध्यात्मिककरण हाफिज की एक महत्वपूर्ण चाल है-

तेरी जुल्फ की सुगंध से मस्तिष्क को आनन्द पहुँचता है। खुतन की कस्तूरी की सुगन्ध मस्तिष्क को लजीज लगती है। (68/178)

यहाँ सुगन्ध को भौतिक इन्द्रियसुख से ऊपर उठाकर आध्यात्मिक उन्माद का माध्यम बताया गया है — कस्तूरी-जैसी खुशबू आत्मा को मदहोश कर देती है और प्रेम को अग्नि-समान जलाने का काम करती है।

कई शेरों में हाफिज ने जुल्फ के प्रति गहरी शिकायत और कष्ट भी व्यक्त किए हैं-

तेरी काली जुल्फ से मैं इस प्रकार शिकायत रखता हूँ कि न पूछ; उसकी वजह से मैं इस प्रकार निर्धन हो गया हूँ कि न पूछ। (68/178)

यह भाषा प्रेम की तीव्र पीड़ा और आत्म-उपलम्भ की अभिव्यक्ति है — जुल्फ जितनी मोहक, उतनी ही प्रेमी के लिए निर्धनता, व्याकुलता और आत्म-खोज का कारण बन जाती है।

प्रेमी का न्याय-आश्रय खोजने का दृश्य भी गौरतलब है-

उसके सिर की जुल्फ को पकड़ूँगा व ख्वाजा के हाथ में दे दूंगा कि शायद उसके हाथ से मैं न्याय ले लूँ। (83/209)

यह कहने का तात्पर्य है कि प्रेमी को लगता है—मेरे दुख का निवारण आध्यात्मिक गुरू या पवित्र हस्त के पास है; यदि प्रिय का जाल ही न्याय के सम्मुख रखा जाए तो शायद उसे राहत मिले। इसमें दायित्व-भाव और आध्यात्मिक मध्यस्थता की छवि उभरती है।

तेरी जुल्फ के फंदे से किसी की मुक्ति नहीं है। तू विनम्र प्रेमियों की हत्या करता है और प्रतिहिंसा से नहीं डरता। (85/218)

अर्थात् तेरी जुल्फ का फंदा ऐसा है जिससे कोई भी बच नही सकता; तू तो कोमल-हृदय प्रेमियों को ही मार गिराता है और इसके दु:परिणाम से भी न घबराता है।

ऐ धारदार सरू के वृक्ष! तुम्हारे बिना फल और बाग़ को क्या करूँ? बालछड़ जैसी जुल्फ़ को क्या खीचूं। सौसन (आसमानी रंग का एक फूल जिसकी उपमा फ़ारसी कवि जोभ से देते हैं) के कपोल को क्या करूँ?

यहाँ सरू (लंबा, सीधा, आकर्षक वृक्ष) प्रिय के रूप और कांति का प्रतीक है। कवि कहता है कि यदि तू (प्रिय) ही अनुपस्थित हो तो फूलों और बाग का सौंदर्य निरर्थक है। उसके बिना जुल्फ को खींचने और कपोल के फूलों की उपमा देने का कोई प्रयोजन नहीं। यहाँ प्रिय के सौंदर्य को मूल और शेष जगत के सौंदर्य को गौण माना गया है।

प्रिय को चाँद की उपमा दी गई है। कवि कहता है—

बुर्के का बंध खोल ताकि उसकी जुल्फ दिखाई दे और मैं अपने अनुरागी मस्तक को उसके पाँव पर डाल सकूँ। (92/255)

यहाँ जुल्फ का प्रतीक आत्मसमर्पण से जुड़ता है। प्रेमी अपने अहं को त्याग कर सौंदर्य के चरणों में समर्पित हो जाता है।

इसके बाद होगा मेरा हाथ और जंजीर की भांति प्रेमिका की जुल्फ़। मैं दीवाने दिल की इच्छाओं के पीछे कब तक दौडूं। (99/267)

जुल्फ को कवि जंजीर की तरह देखता है— प्रेमी का हाथ और जुल्फ की ज़ंजीर एक साथ बँध जाते हैं। प्रश्न यह है कि मैं कब तक इस दीवानगी के पीछे दौड़ता रहूँ? यहाँ जुल्फ बंधन का प्रतीक है—एक मीठा बंधन जिसमें प्रेमी बंध कर भी आनंदित है।

एक रात में फिर दिल को जुल्फ़ के अंधकार में खोजता था। उसकी आकृति देखता था और उसके लाल होंठ से शराब का प्याला (जाम) पी रहा था। (103/280)

जुल्फ - अंधकार और रहस्य। होंठ - अमृत/जाम। यह द्वैत प्रेम की रहस्यमयी यात्रा को दर्शाता है।

तुम्हारी मदमत्त आँखों में जादू का इन्द्रजाल छिपा हुआ है। तुम्हारी अस्त-व्यस्त जुल्फ़ में सौंदर्य का संतोष आविर्भूत है। (105/283)

प्रिय की आँखों में जादू का इन्द्रजाल छिपा है और अस्त-व्यस्त जुल्फ़ में सौंदर्य का संतोष प्रकट होता है। यहाँ जुल्फ केवल आकर्षण नहीं बल्कि सौंदर्य का चरम संतोष है।

तेरी जुल्फ के जाल और तेरे तिल के दाने से संसार में कोई पक्षी नहीं रहा जो सौंदर्य का शिकार न हुआ हो।(106/284)

जुल्फ और तिल मिलकर शिकार का जाल बनाते हैं। प्रेमी-पक्षी उसमें फँसकर विवश हो जाता है।

मेरे दिल का घर तेरी जुल्फ़ में है इस तरह से उसको न छोड़ और उसे मत तोड़। (109/287)

जुल्फ यहाँ आश्रय और घर का प्रतीक है। प्रेमी अपना अस्तित्व प्रिय के केश-पाश में ही देखता है।

जुल्फ़ को तू कह दे कि वह सरकशी (बगावत) का रिवाज छोड़ दे। नखरे से कह दे कि अत्याचार का हृदय तोड़ दे। (112/293)

जुल्फ का प्रतीक यहाँ कठोरता और विद्रोही स्वभाव से जुड़ा है। यह प्रेम का कठोर पक्ष है।

उसकी आकर्षक जुल्फ़ मंद पूर्वी समीर की गर्दन में फंदा डालती है। एक साथ यात्रा करने वाले मुसाफ़िर (प्रेमी) के साथ हिन्दू (लूटेरा) (हिन्दू का अर्थ काला भी है। जुल्फे हिन्दू-काली जुल्फ़। अरबी और फारसी साहित्य में हिन्दू का अर्थ डाकू भी है।) की शक्ति देख। (115/296) यहाँ जुल्फ = डाकू। यह सौंदर्य का हरणकारी पक्ष है।

ऐ वह कि सौंदर्य की वाटिका में तेरा मुख मंडल अपने आप उगे हुए फूल की भांति है तुम्हारी जुल्फ़ की घुंघराली सिलवटें चीन की कस्तूरी की भांति सुगंधित हैं। (116/299)

प्रिय का मुख फूलों के समान है और जुल्फ की घुँघराली सिलवटें चीन की कस्तूरी की भाँति सुगंधित हैं। जुल्फ यहाँ सुगंध और आकर्षण का प्रतीक है।

दांतों के बाहर तेरे होंठ ने पिस्ता के होंठ को परास्त कर दिया है। तुम्हारी जुल्फ़ के मोड़ के चौगान (पोलो) ने गेंद की भाँति मेरे दिल को ले लिया है। (117/299)

प्रिय के होंठ पिस्ते से भी श्रेष्ठ बताए गए हैं। वहीं जुल्फ के मोड़ (कर्ल्स) को कवि ने चौगान (पोलो का खेल) कहा है, जिसमें दिल गेंद की तरह लुढ़ककर खो जाता है। यहाँ जुल्फ खेल और आकर्षण का प्रतीक है—प्रेमी का हृदय खिलवाड़ की वस्तु बन जाता है।

आनन्द की सभा और महफ़िल में अभीप्सित सुगंधित द्रव्य नहीं है। ऐ प्रात:कालीन वायु के मधुर स्पंदन! यार की जुल्फ़ की कस्तूरी कहाँ है? (120/302)

आनंद की सभा में प्रिय की जुल्फ की कस्तूरी अनुपस्थित है। कवि प्रात:कालीन वायु से प्रश्न करता है—कहाँ है वह सुगंध? यहाँ जुल्फ की अनुपस्थिति ही पूरी महफ़्लि को फीका कर देती है।

ऐ काफ़िर दिल तू जुल्फ़ के पर्दे को नहीं बाँधता है और मैं डरता हूँ कि

उस दिल छीनने वाली की भौंहों की भंगिमा मेरा मह्राब बदल देगी। (121/303)

कवि डरता है कि यदि प्रिय की जुल्फ का परदा हटा तो उसकी भौंहों की भंगिमा उसके मिहराब (इबादत की दिशा) को बदल देगी। यह आध्यात्मिक प्रतीक है—प्रिय का सौंदयज़ धार्मिक एकाग्रता को भी विचलित कर सकता है।

तुम्हारी जुल्फ़ की सुगंध के कारण से अगर जान बर्बाद हुई तो क्या हुआ? हज़ारों महान जीवन प्रेमिकाओं पर न्यौछावर हैं। (125/507)

कवि कहता है—अगर जुल्फ की सुगंध से मेरी जान चली जाए तो भी क्या? हजारों जीवन ऐसे प्रेम पर न्यौछावर हैं। जुल्फ यहाँ बलिदान और आत्मसमर्पण का प्रतीक है।

दिल के शिकार के लिये मेरी गर्दन में जुल्फ़ की ज़ंजीर शहंशाह के फंदे की तरह डाल दी तूने, ऐ गर्दनों के मालिक! (129/322)

प्रेमी की गर्दन में प्रिय की जुल्फ की ज़ंजीर पड़ गई है—मानो शहंशाह का फंदा। यहाँ जुल्फ बंधन है, पर यह बंधन गौरव और प्रेम का है।

तुम्हारी तुल्फ़ की कृतघ्नता से हर क्षेत्र परेशान हो गया है। तुम्हारी आँख के जादू से हर कोने में एक बीमार है। (131/335)

जुल्फ की कृतघ्नता ने सबको व्यथित कर दिया है, और आँखों के जादू ने हर दिल को बीमार। यह सौंदर्य का कठोर और घातक पक्ष है।

हृदय के अन्दर लैला का केश रख और मजनूँ के प्रेम का कार्य कर क्योंकि प्रेमी को बुद्धिमानी की बातें क्षति पहुंचाती हैं। (135/346)

यहाँ जुल्फ प्रेम-परंपरा का प्रतीक है, जहाँ विवेक का त्याग कर पूर्ण समर्पण करना होता है।

तुम्हारे केश की सुगंध तथा मुख के लिए ये आते जाते हैं। प्रात:कालीन हवा सुगंध प्राप्ति के लिये तथा फूल शृंगार के लिये। (137/354)

प्रिय के केश की सुगंध और मुख का आकषज़्ण, दोनों ही प्रात:कालीन हवा और फूलों को शृंगार हेतु प्रेरित करते हैं। यहाँ जुल्फ प्रकृति को भी प्रभावित करती है।

मैं हूँ! यद्यपि ज़ंजीर की भाँति उसका केश एक सांप है। मैं उद्विग्न हूँ और मुख विक्षिप्त-सा है। (140/361)

जुल्फ को कवि ने जंजीर और साँप दोनों कहा है। प्रेमी उद्विग्न है, उसका मुख विक्षिप्त-सा हो जाता है। यह जुल्फ का भयावह और खतरनाक पक्ष है।

वह केश जिसने सौंदर्य के कान में कुंडल डाला है, उसके लिये काव्य के मोती का लोलक (कान का बुंदा) हो जाय, ऐ हाफ़िज! (142/372)

जुल्फ ने मानो सौंदर्य के कान में कुंडल डाल दिया है। कवि प्रार्थना करता है कि उसके लिए काव्य का मोती ही कान का बुंदा बन जाए। यहाँ जुल्फ को कलात्मक प्रेरणा और सौंदर्य के आभूषण का प्रतीक बनाया गया है।

सूफी काव्य में सौंदर्य केवल बाह्य आकर्षण के लिए नहीं है, बल्कि यह आध्यात्मिक चेतना और परमात्मा की अनुभूति का प्रतीक है। हाफिज के दीवान में जुल्फ का चित्रण इस दृष्टि का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनके 143 चयनित शेरों में जुल्फ को केवल प्रियतम के बाल के रूप में नहीं, बल्कि रहस्यात्मक और दार्शनिक प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सतही दृष्टि से जुल्फ का वर्णन स्थूल प्रतीत हो सकता है, लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से यह प्रेम और आत्मसमर्पण की गहन अनुभूति को दर्शाता है।

जुल्फ की उलझनें और उसके फंदे साधक की बुद्धि को मोह और तृष्णा से बाँधते हैं, जिससे उसकी अक्ल पर प्रभाव पड़ता है और वह प्रेम पथ की ओर अग्रसर होता है। यह प्रेम पथ वास्तव में परमात्मा की ओर साधक की यात्रा का रूपक है। जैसे चक्र के भीतर चक्र होता है, वैसे ही जुल्फ की लटों में ईश्वर की आत्माभिव्यक्ति की जटिलताएँ छिपी हैं। हाफिज की गजलों में यह स्पष्ट है कि जुल्फ केवल शृंगारिक तत्व नहीं, बल्कि दिव्य प्रेम की कसौटी है।

सूफ़ी मत में परमपिता परमेश्वर के प्रति समर्पण इसकी सबसे अधिक भारी विशेषता है जिसमें साधक परमात्मा से मिलने को आतुर होता है। ईश्वर-प्राप्ति अथवा 'वस्ल' प्राप्त करने के लिए उन्हें तोबा (बुरे कर्मों के प्रति क्षोभ), वारा (अपरिग्रह), जुहुद (करुणा), फकर (निर्धनता), सब्र (बर्दाश्त), शुकर (अहसानमन्द), खौफ (भय), राज (आशा), तवालुख (सन्तोष) और रिजा (ईश्वर को आत्मसमर्पण) का पालन करना आवश्यक था। उनका विश्वास नमाज, रोजा, हज-यात्रा आदि में न था।

सूफी साधना में जुल्फ के साथ तिल का भी महत्वपूर्ण स्थान है। फारसी और सूफी काव्य में तिल न केवल सौंदर्य का प्रतीक है, बल्कि विरह और दुःख का भी संकेत देता है। निजामी और कुतुबन ने अपने काव्य में तिल को इस प्रकार प्रस्तुत

किया है कि तिल जहाँ श्रृँगार को व्यक्त करता है वहीं विरह के रूप में भी वर्णित हुआ है।

निजामी ने तिल के विषय में लिखा है–

दर शबे खत साख्ता सह्रे हलाल,
बावली ग़मजा व हिंदवी खाल,
हर नफ़स अज़ ग़मज़ा व खाले चुनान,
कुश्ता जहान बाबिल व हिंदुस्तान।

यह प्रेम, व्यथा और आध्यात्मिक चेतना का मिश्रित रूप प्रतीत होता है। मृगावती में तिल को विषधर और गाज के समान बताया गया है, जो काल और जीवन के संघर्षों का प्रतीक है।

इस प्रकार सूफी काव्य में जुल्फ और तिल केवल लौकिक सौंदर्य नहीं, बल्कि आत्मा और परमात्मा के मध्य संबंध की अभिव्यक्ति हैं। जुल्फ़ साधक को मोह, मोहब्बत और आत्मसमपज़ण की ओर ले जाती है, और तिल उसके भीतर विरह और प्रेम की अनुभूति जगाता है। हाफ़िज़ और अन्य सूफ़ी कवियों ने इन प्रतीकों के माध्यम से प्रेम और आध्यात्मिकता को एकीकृत रूप में प्रस्तुत किया है।

डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय ने तिल के विषय में प्रमुख फारसी एवं हिन्दी काव्यों का विशद वर्णन प्रस्तुत किया है। उनके अध्ययन के अनुसार, मौलाना दाउद की रचना चन्दायन (1379 ई.) में चन्दा के सौंदर्य और कपोलों के चित्रण के उपरांत तिल का विशेष चित्रण मिलता है। इस चित्रण में तिल को केवल एक श्रृंगारिक अंग के रूप में नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और प्रतीकात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।

मौलाना दाउद ने अपने तिल के वर्णन में निम्नलिखित बातें उभारी हैं:

(1) नयन और कान के बीच तिल – इस तिल को विरह का केंद्र बिंदु कहा गया है। यह प्रतीक है उस छोटे, लेकिन प्रभावशाली चिन्ह का, जो प्रेम और विरह की अनुभूति जगाता है।

(2) भ्रमर की उपमा – तिल को ऐसा चित्रित किया गया है जैसे कमल पर भ्रमर बैठा हो। यह भ्रमर सुगंध से लुभा हुआ है और तिल की उपस्थिति से मुख का सौभाग्य प्रकट होता है। तिल और भ्रमर का यह यथार्थपूर्ण रूपक प्रेम और आकर्षण की सूक्ष्मता को प्रकट करता है।

(3) विरह की आग – तिल के विरह से वन में घुँघुची जल उठी। इस तिल का आधा काला और आधा लाल होना विरह और प्रेम की मिश्रित अनुभूति का प्रतीक है। यह दिखाता है कि तिल केवल श्रृंगार का अंग नहीं, बल्कि भावना और व्यथा का प्रतीक भी है।

(4) राजनीतिक और भावनात्मक प्रभाव - वाजिर और राजा रूपचन्द के हृदय में तिल के प्रभाव का चित्रण किया गया है। तिल के स्पर्श या संयोग से वाजिर दूर चला जाता है और राजा के हृदय में विरह की अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है। यह तिल इस प्रकार जल रहा है कि बुझने का नाम नहीं लेता। यह दर्शाता है कि सूफी काव्य में छोटे-से प्रतीक, जैसे तिल, गहन भावनात्मक और आध्यात्मिक अर्थ रखते हैं।

मृगावती (सन् 1503 ई.) में भी तिल का चित्रण है-

(1) तिल विषधर है। वह न पतला है और न मोटा। उसके कनकवर्ण कपोल पर यह खोटा तिल है।

(2) वह ऐसा है मानो पत्थर पर भ्रमर बैठा हो।

मलिक मुहम्मद जायसी कृत पदमावत (1545 ई.) में दो छंदों में तिल का वर्णन है। अर्थात छंद 109 में, निम्नलिखित बातें तिल के संबंध में कही गई हैं -

(1) पदमावती के बाएँ कपोल पर तिल है।

(2) घुँघुची उसी तिल से कलमुँही हो गई है।

(3) तिल वरह का बाण है जिसको सीधे ताना गया है।

(4) तिल कालरूप है।

(5) नेत्रों ने जैसे ही उस तिल को देखा, उनमें परछाई पड़ गई।

(6) कपोल पर उस तिल को देखकर ध्रुव नक्षत्र आकाश में गड़ा रह गया। कभी वह उगता है और कभी डूबता है। पर अपना स्थान तिल भर भी नहीं छोड़ता।

हिन्दी और फारसी काव्यों में तिल का चित्रण केवल श्रृंगारिक अंग के रूप में नहीं, बल्कि भावनात्मक और प्रतीकात्मक दृष्टि से भी किया गया है। डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय के अनुसार, मृगावती (1503 ई.) और पदमावत (1545 ई.) में तिल का उल्लेख विशेष महत्व रखता है।

मृगावती (1503 ई.) में तिल का चित्रण -

(1) तिल को विषधर के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह न पतला है और न मोटा। उसके कनकवर्ण कपोल पर तिल की उपस्थिति उसे और भी आकर्षक बनाती है।

(2) तिल की तुलना पत्थर पर बैठे भ्रमर से की गई है, जो सुगंध और सौंदर्य का प्रतीक है।

मलिक मुहम्मद जायसी ने पदमावत के छंद 109 में तिल का उल्लेख किया है। उनके अनुसार:

(1) पदमावती के बाएँ कपोल पर तिल स्थित है।

(2) घुँघुची उसी तिल के कारण कलमुँही हो गई है, अर्थात तिल की उपस्थिति से सौंदर्य और आकर्षण की भावना प्रकट होती है।

(3) तिल को विरह का बाण कहा गया है, जो सीधे लक्ष्य को भेदता है।

(4) यह तिल कालरूप है, जो समय और अनित्य भावनाओं का प्रतीक है।

(5) नेत्रों ने तिल को देखते ही परछाई उत्पन्न हो गई, जो प्रेम और आकर्षण की तीव्रता को दर्शाती है।

(6) कपोल पर तिल को देखकर ध्रुव नक्षत्र भी आकाश में गड़ा प्रतीत होता है। यह कभी उगता और कभी डूबता है, पर अपना निश्चित स्थान नहीं छोड़ता, जो स्थायित्व और गहन प्रभाव का प्रतीक है।

इस प्रकार, सूफी और श्रृंगारी काव्य में तिल केवल भौतिक सौंदर्य का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह विरह, प्रेम, स्थायित्व और गहन भावनाओं का प्रतीक भी है। यह सूफी दृष्टि से प्रेम और आध्यात्मिक अनुभूति की जटिलताओं को चित्रित करने का माध्यम बनता है।

पदमावत में तिल का वर्णन (छंद 480) -

मलिक मुहम्मद जायसी ने पदमावत के दूसरे चरण में तिल का चित्रण अत्यंत सूक्ष्म और प्रतीकात्मक ढंग से किया है। उनके अनुसार:

अगिन बाण तिल जानहुँ सूझा, एक कटाख लाख दुइ जूझा।
सो तिल काल मेटि नहिं गएऊ, जब वह गाल काल जग भएऊ।
देखत नैन परी परिछांही, तेहि तें रात स्याम उपराहीं।
सो तिल देखि कपोल पर गगन रहा धुव गाड़ि।
खिनहि उठै खिन बूड़े डोलै नहिं तिल छाँड़ि।।

(1) बाएँ कपोल पर स्थित तिल विरह की अग्नि का प्रतीक है। इसे अगिन बाण के रूप में बताया गया है, जो प्रेम और वेदना की चिनगारी को प्रकट करता है।

(2) तिल की दृष्टि से प्रभावित कोई भी जल जाता है। इसलिए किसी की दृष्टि बाईं तरफ न पड़े, यह चेतावनी दी गई है।

(3) तिल की तुलना ऐसे भ्रमर से की गई है जो कमल पर बैठा हुआ हो और जीवदान देने के बावजूद छूट न सके। यह तिल की स्थायित्व और आकर्षण को दर्शाता है।

(4) जिसने भी तिल देखा, उसकी आँखों में केवल वही छा गया। तिल ने सम्पूर्ण दृश्य को ग्रहण कर लिया और अन्य वस्तुएँ दिखाई नहीं दीं।

(5) तिल के ऊपर अलक रूपी मंजरी लटक रही है, जो नागिन की तरह गाल को छू रही है। यह तिल के सौंदयज़ और आकर्षण में अतिरिक्त अलंकरण जोड़ता है।

इस प्रकार, पदमावत में तिल केवल भौतिक सौंदर्य का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह विरह, आकर्षण और मानसिक प्रभाव का सूक्ष्म प्रतीक भी है। तिल के माध्यम से जायसी ने सौंदर्य और प्रेम की गहराई, तथा उसके आध्यात्मिक और भावनात्मक प्रभाव को चित्रित किया है।

मंझन कृत 'मधुमालती' में तिल के संबंध में निम्नलिखित उल्लेख मिलते हैं–

(1) कुँवर के चक्षु वहाँ जाकर लुब्ध हो गए। वे उस तिल में अटक गए और बाहर नहीं निकलते।

यहाँ तिल को प्रेमिका के सौंदर्य का केंद्र बिंदु माना गया है। प्रेमी की दृष्टि तिल पर केंद्रित हो जाती है और उसके ध्यान और भावनाओं का संकेंद्रण वहाँ स्थिर हो जाता है। यह सूफ़ी दृष्टि से भी मोह और आध्यात्मिक आकषण का प्रतीक है।

(2) यह तिल नहीं है, यह उसके नयनों की छाया है जिससे उसके मुख ने शोभ प्राप्त की है।

तिल यहाँ केवल भौतिक बिंदु नहीं, बल्कि प्रकाश और छाया का खेल है। यह प्रेमिका के मुख की निर्मलता और आकर्षण को बढ़ाता है। छाया के माध्यम से तिल सौंदर्य को बढ़ाता है, और यह दर्शाता है कि असली सौंदर्य दृष्टि और भावनाओं के अनुभव में है।

(3) उसका मुख दर्पण के सदृश निर्मल है। उसमें तिल की छाया दिखाई पड़ रही है।

प्रेमिका का मुख दपज़्ण सदृश साफ और निर्मल है। तिल की छाया यहाँ प्रतिबिंब और सौंदर्य का प्रतीक बनकर सामने आती है। दर्पण और छाया का चित्रण यह दिखाता है कि सौंदर्य केवल भौतिक नहीं, बल्कि दृष्टि और अनुभूति के माध्यम से जगा है।

(4) मेरे कोमल लोचनों की काली पुतली निमज़्ल मुख पर तिल होकर झलक रही है।

प्रेमी की दृष्टि (लोचन) और प्रेमिका के मुख का तिल आपस में संपर्क और मिलन की अनुभूति पैदा करते हैं। यह दृश्य प्रेमी की मानसिक और भावनात्मक व्याकुलता को उजागर करता है।

(5) वह सचमुच मुकुर सदृश है। उसमें मेरे चक्षुओं की छाया तिल के

आकार में दिखाई पड़ रही है।

तिल के माध्यम से प्रेमी का स्वयं का प्रतिबिंब भी सामने आता है। यह सूफ़ी दृष्टि में आत्मानुभूति और प्रेम-संयोजन का प्रतीक है, जहाँ प्रेमी और प्रेमिका का सौंदयज़ और मनोभाव आपस में परस्पर मिश्रित होते हैं।

मंझन कृत मधुमालती तथा उसमान कृत चित्रावली में तिल का वर्णन केवल सौंदर्य बिंदु के रूप में नहीं किया गया है, बल्कि यह भाव, प्रतीक और सूफी दृष्टि का केंद्र भी है।

(1) मंझन के अनुसार कुँवर के चक्षु तिल में अटक गए और बाहर नहीं निकलते। इसका अर्थ है कि यह तिल दृष्टि का केंद्र और मोहक आकर्षण का प्रतीक है।

यह तिल केवल भौतिक रूप में नहीं है, बल्कि मुख की शोभा और निर्मलता का प्रतिबिंब भी है। मुख दर्पण सदृश निमज़्ल है और इसमें तिल की परछाईं दृष्टि को लुभाती है।

(2) तिल से प्रेमा का श्रृंगार सहगुिणा बढ़ जाता है। यह दिखाता है कि तिल सौंदर्य और आकर्षण को परिपूर्ण करने वाला केंद्र बिंदु है। चित्रावली में इसे भ्रमर और पुष्प की उपमा दी गई है। यह दर्शाता है कि तिल सौंदर्य की पूर्णता और सजीव आकर्षण का प्रतीक है।

(3) तिल केवल देखने में सुंदर नहीं है; यह भावनाओं को प्रभावित करने वाला केंद्र भी है। तिल पर दृष्टि पड़ते ही वह जलता है और प्रेमी की भावनाएँ विकल हो जाती हैं। सूफी दृष्टि में तिल का यह प्रभाव विरह, उत्कंठा और प्रेम की गहनता को प्रदर्शित करता है।

(4) तिल की परछाईं नयनों में ज्योति उत्पन्न करती है और किसी की दृष्टि उस पर पड़ते ही पूरी चेतना को प्रभावित कर देती है। इसका अर्थ यह है कि तिल प्रेमिका की पहचान और सौंदयज़ का अद्वितीय चिन्ह है।

(5) सूफी काव्य में तिल को विरह का मसिबिंदु कहा गया है। प्रेमी तिल देखकर भावनात्मक और मानसिक रूप से जलता है। यह सूफी दृष्टि में यह दर्शाता है कि सौंदर्य का अनुभव आध्यात्मिकता और आत्मा के प्रेम का मार्ग भी खोलता है।

(6) हाफिज के काव्य में ज़ुल्फ का रहस्यात्मक चित्रण और मंझन, उसमान, तथा पदमावत जैसे काव्यों में तिल का वर्णन इस बात का प्रमाण है कि सूफी और लौकिक सौंदर्य दोनों में यह केंद्रीय भूमिका निभाता है। तिल और ज़ुल्फ के माध्यम से कवियों ने न केवल प्रेमिका की भौतिक सुंदरता बल्कि प्रेमी की मानसिक और भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ भी व्यक्त की हैं।

मधुमालती में मंझन ने तिल का स्वरूप श्रृंगार की चरमवस्था माना है-

'तिल कपोल पर बनुउ अपारा

एक बूंद का साहस सिंगारा'। (मधुमालती 1845)

'मधुमालती' (मंझन) की कल्पनाएं इन सारे प्रेमाख्यानों से भिन्न हैं। मधुमालती का मुख निर्मल दर्पण है जिसमें तिल की छाया है। कुँवर कहता है, मेरे कोमल लोचनों की काली पुतली निर्मल मुख पर तिल होकर झलक रही है। यह मौलिक उद्‌भावना मंझन की विचारधारा के अनुकूल है जिसमें खुदा, खल्क और मुहम्मद की एकता स्थापित की गई है।

मंझन ने फारसी कवियों के तिल विषयक् मत का अनुसरण नहीं किया है। मंझन तिल को काल या विरह के रूप में स्वीकार नहीं करता।

मौलाना नमी ने तिल का वर्णन अपनी शैली में इस प्रकार किया है-

''यक ज़मान बगुजार ऐ हमरह मलाल,

ता बग़ोयम वस्फ़े खाले जाँ जमाल,

दर बयाने न आयद जमाले हाले ऊ,

हर दो आलम चीस्त अक्से खाले ऊ,

चूंकि मन अज़ खाले ख़ूबश दम जनम,

नुत्फ़ मी खाहद कि वशकाफ़द तनम,

हम चू मूरे अंदरीन खिरमन ख़ूशम,

ता फ़जू अज़ ख़ेश बारे भी कशम,''

ए हम सफ़र दोस्त! अपनी थकान थोड़ी देर के लिए छोड़ दो ताकि मैं उसके सौंदर्य से एक तिल के बारे में कुछ कह सकूँ। उसके सौंदर्य का हाल मेरे वर्णन में नहीं आता। ये दो संसार क्या है? उसके तिल का प्रतिबिंब। जबकि मैं उसके तिल के सौंदर्य के बारे में सांस लेता हूँ (भावार्थ, कुछ कहता हूँ) मेरी वाणी मेरे शरीर से फटकर निकल जाना चाहती है। मैं उस चींटी की भाँति खलियान में खुश हूँ जो अपने आप भारी बोझ उठाए।

निजामी ने तिल को सौंदर्य के रूप में चित्रित किया है-

''बर रिश्ता (रिस्ता) जुल्फ़ अक्दे खालश,

अफ़ जुदा जवाहर जमालश

दर हर दिले अज़ हवास मैले

गैसुवश चू लैल नाम लैले''

आगे भी वे कहते हैं-

मह अज़ ख़ूबी यश ख़दरू खाल खान्दा।

शब अज़ खालश किताबे फ़ाल खांदा।

उसके तिल के सौंदर्य को देखकर चाँद कहता है, यह तिल मेरा है और रात इस तिल के लिये शुभ शकुन की पुस्तक पढ़ रही है।

हाफ़िज का 'तिल' का वर्णन सूफी फारसी काव्यों में बहुआयामी है। वे तिल में सौन्दर्य, बन्धन, मोती, रूह का संबंध खुदा से संबंधों की प्रवृत्ति इत्यादि रूप में विवेचित करते हैं-

''अगर आँ तुर्के शीराजी बदस्त आरद दिले मारा
बखाले हिंदुवश बख्शम समरकंद व बुखारा रा।''
''जुल्फ़े ऊ दाम अस्त बखालश दान ये आँ दामे मन
दर उम्मीदे दाना उफ्तादम अन्दर दामे दोस्त।''
'आँ दिल बनुमा कि दर रहे ऊ
बर चेहरे न खाले हैरत आमद'
'सबादे लौहे बीनिश रा अज़ीज अज़ बहरे आँ दारम,
कि जाँ रा नुस्खा बाशद जेतकशे खाले हिंदोयत'
'बखत न खाले गदायान मदिः खज़ीन ये दिल
बदस्ते शाहवशें देः कि मुह्तरम दारद।'
'मुर्गे़ रूहम कि हमीं जदज़ सिरे सदरह सफ़ीर
आक़ेबत दानए खाले तू फगन्दश दरे दाम'
'शेवाये नाज़े तू शीरीं खतो खाले तू मलीह
चश्मे अबु ये तू ज़ेबा क़दे बाला ए तू खूश'
''अज दामे जुल्फ़ व दाने खाल तू दरजहाँ
यक मुर्गे दिल न मानद न गश्ता शिकार हुस्न''
''अज दानये खाल व दामे जुल्फ़त।
मुर्गे दिल मनफुतादा दरे दाम।''

'यूसुफ जुलेखा' में जामी ने तिल का अलौकिक चित्रण किया है। इस विषय के वे रूमी के निकट हैं। जामी ने कहा है-

जामी को 'यूसुफ जुलेखा' में बजीरा नाम की एक लड़की भी नायिका जुलेखा की भाँति यूसुफ पर आकृष्ट हो जाती है। वह यूसुफ के सौन्दर्य का व्याख्यान करती है और कहती है-''वह कौन है जिसने तुम्हारे कपोल पर तिल रखने की कृपा की है। कौन है जिसने उस गुलाब के बगीचे में इस काली चिड़िया को रखा है।''

ईश्वर और तिल के विषय में जामी का वर्णन दृष्टव्य है-

ह्वेन् जज़ेफ़ इन हिज ईयार हैड हर्ड हैड दिस वर्ड,

आउट आव हिज फाउन्टेन स्वीट सोल्स फूड वाज पोर्ड,
आइ ऐम द ग्रेट क्रिएटर्स वर्क, ही क्राइड,
विद वन ड्राप हिज ओशन सैटिस्फाइड
द हेवेन इन बट वन डाट काम पर्फेशंस रीड,
द अर्थ बट वन बड फाम हिज ब्यूटीज मोड,
द सन ए स्पार्क आउट आव हिज विजडम्स लाइट।
द स्फियर ए बबल् फाम हिज सौ आव माइट,
प्योर इज़ हिज ब्यूटीफाम आल चार्ज आव सिन,
आव द इनविजिबल द स्क्रीन विदिन,
आव वर्ल्ड्स ऐटम्स ही हैज मिरर्स मेड,
आव हिज ओन फेस आन ईच ऐन एमेज लेड।

उपर्युक्त पंक्तियों में अनेक ऐसी हैं जिनका धरातल सांसारिक लगता है। यद्यपि यह सही है कि सूफियों का एक वर्ग लौकिक और पारलौकिक की आत्मा में भेद नहीं मानता था।

तिल के विषय में केवल भौतिक सौंदर्य या प्रेमिकाओं के आकर्षण तक सीमित दृष्टि नहीं है, बल्कि कुछ कवियों और विचारकों ने इसे दार्शनिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भी देखा है।

मीर अब्दुल वाहिदु बिलग्रामी ने अपने ग्रंथ हकायके हिन्दी (1556 ई.) में तिल और अन्य सौंदर्य बिंदुओं को संसार और परलोक के बीच का प्रतीक बताया है। उनके विचार इस प्रकार हैं–

* वह कहते हैं कि जो वस्तु लोक में दिखाई देती है, वह परलोक के सूर्य के प्रतिबिंब के समान है। इसका अर्थ है कि भौतिक दुनिया केवल एक प्रतिबिंब है; असली सुंदरता और पूर्णता परलोक (आध्यात्मिक वास्तविकता) में निहित है।
* तिल, केशपाश, रोम और भृकुटि जैसी सूक्ष्म चीजें अपने स्थान पर सुंदर हैं, किंतु इनकी उपमा केवल आंशिक और प्रतीकात्मक हो सकती है।
* बुद्धिमान व्यक्ति जब इन भौतिक रूपों से अर्थ निकालता है, वह केवल अनुपात और संबंध देख पाता है; परंतु संपूर्ण अनुभव को शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं।
* मीर अब्दुल वाहिदु का यह दृष्टिकोण सूफ़ी परंपरा के अनुरूप है, जिसमें सौंदर्य और भौतिक वस्तुएँ आध्यात्मिक संदेश का माध्यम होती हैं।

सुविख्यात पश्चिमी शोधकर्ता रिनल्ड निकल्सन ने रूमी के साहित्य में तिल का महत्व विश्लेषित करते हुए कहा है:

*   उनका विचार है कि तिल केवल शारीरिक सौंदर्य का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि यह 'रूहे इंसानी' की एकता और पूर्णता का प्रतीक है।

*   कवि तिल के माध्यम से यह दिखाना चाहता है कि पूर्ण मानव (इंसाने कामिल) ईश्वरीय सौंदर्य और आध्यात्मिक पूर्णता का प्रतिनिधि है।

*   तिल को रूमी ने उस स्थान पर रखा है, जो ईश्वर के कपोल पर है, अर्थात यह संपूर्ण सृष्टि का सूक्ष्म प्रतिनिधित्व करता है।

*   इस दृष्टिकोण में, तिल केवल भौतिक और व्यक्तिगत आकषज़्ण का केंद्र नहीं है, बल्कि संपूर्ण सृष्टि और मानवता का प्रतीक है।

निकल्सन ने अरबी का एक छंद उद्धृत किया है-

अल कबनु खदुम कदबदा मिन खालिहि
ब-ल-क-द तजल्ला खलहु मिन खद्दिहि

बाह्य सृष्टि कपोल है जिसकी उत्पत्ति उस ईश्वर के तिल से हुई है और उसका तिल उसके कपोल से प्रकट हुआ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सूफी परम्परा में सौन्दर्य की विवेचना जुल्फ़ों और तिल के रूप में ही नहीं, अपितु नखशिख वर्णन में भी हुई है। विरह के प्रतीक, संदेश वाहक के रूपों का वर्णन मृगावती में कुतबन ने किया है-

पवन संदेशा ले रे चलहु भंवर किन।
मालति यह रे अवस्था कहियहु तुम्ह बिन।
जप माला करि नाऊं जगत ही जिय रहई।
निसि वासुर विवि तीस पीच गुन हिय दहई।

कहने का अर्थ यह है कि नखशिख का वर्णन फारसी और हिन्दी काव्यों में विभिन्न प्रकार से दृष्टिगोचर हुआ है जिसका अभिप्राय आध्यात्मिक ही है।

❑❑❑